अनुबोधन, खण्ड 2, अंक 1, मार्च 2026, पृष्ठ 69–75
**ISSN: 3049-4184 (प्रिन्ट), 3108-1185 (ऑनलाइन)**
**https://doi.org/10.65885/anubodhan.v2n1.2026.008**

# श्रीमद्भगवद्गीता का निष्काम कर्मयोग: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

**डॉ. हरि नारायण***

प्राप्तिः 10 मार्च 2026 / स्वीकृतः 14 मार्च 2026 / प्रकाशितः 31 मार्च 2026
जर्नल वेबसाइटः https://anubodhan.org

**सारांश**

धर्म, नीति और दर्शन की दृष्टि से गीता का भारत में ही नहीं संपूर्ण विश्व में महत्वपूर्ण स्थान है। गीता में निहित उपदेशों का सार्वभौमिक महत्व है। इसने संपूर्ण मानव-जाति को प्रभावित किया है। इसका प्रमाण यही है कि विश्व की अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद किया गया है। इसकी लोकप्रियता का सबसे प्रमुख कारण यही है कि इसमें मानव मात्र के जीवन से संबंधित जटिल से जटिल समस्याओं का विवेचन और वास्तविक समाधान प्रस्तुत किया गया है। गीता को सभी उपनिषदों का निचोड़ कहा जाता है। वेदांत दर्शन की 'प्रस्थानत्रयी' में इसे समादरणीय स्थान प्राप्त है। गीता का संदेश धर्म, संप्रदाय, व्यक्ति, देश-काल, जाति आदि से परे पूरे मानव-जाति के कल्याण के लिए है। जीवन के परम लक्ष्य के रूप में मोक्ष को स्वीकार करते हुए गीता इसके लिए ज्ञान, भक्ति और कर्म तीन मार्गों का निर्देश करती है, परंतु अत्यंत ही स्पष्ट रूप में ज्ञान और भक्ति को आधार रूप में स्वीकार करते हुए गीता निष्काम कर्म को ही अधिक महत्व प्रदान करती है। नैतिक दृष्टि से गीता के निष्काम कर्म का संदेश अत्यधिक महत्वपूर्ण है। निष्काम कर्म का अर्थ है कर्मफल आसक्ति का त्याग कर कर्म करना। गीता के अनुसार किसी भी दशा में मनुष्य को कर्म तो करना ही है, क्योंकि बिना कर्म किए मनुष्य रह नहीं सकता। ऐसी दशा में यदि कर्म निरासक्त होकर किया जाए तो वही कर्म मुक्ति की तरफ ले जाता है। प्रस्तुत शोध-आलेख में गीता में वर्णित निष्काम कर्म योग के वास्तविक स्वरूप को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

*असिस्टेंट प्रोफेसर (सीनियर स्केल), दर्शनशास्त्र विभाग, बलि राम भगत कॉलेज, समस्तीपुर, बिहार
ई-मेल: harineelu1891@gmail.com

**मुख्य शब्द:** निष्काम कर्मयोग, फलासक्ति, कर्मसंन्यास, सकाम कर्म, लोकसंग्रह, समत्वभाव, स्थितप्रज्ञ।

**प्रस्तावना**

गीता 'महाभारत' के भीष्म पर्व का एक अंश है। इसमें 18 अध्यायों में कुल 700 श्लोक हैं। संस्कृत भाषा में लिखा गया यह ग्रंथ अपने भाषागत सौंदर्य और लालित्य के कारण भी प्रिय है। इसकी काव्यमयता हमें आकर्षित करती है परंतु इसमें काल्पनिक उड़ान नहीं है। यह जीवन के यथार्थ और विकट परिस्थितियों में उत्पन्न हुई है। ऐसी स्थिति बन गई है कि अर्जुन को युद्ध करना ही है, अन्यथा उसका अस्तित्व समूल नष्ट हो जाएगा। युद्ध की तैयारी हो चुकी है। श्री कृष्ण अर्जुन के सारथी हैं। अचानक अर्जुन विरोधी कौरवों की सेना में स्वजनों को देखकर विचलित हो जाते हैं और युद्ध का विचार त्याग देते हैं। फिर इस विषम परस्थिति में भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को कर्तव्य और अकर्तव्य का उपदेश देते हैं। अर्जुन और श्री कृष्ण के इसी संवाद से गीता का विषय-प्रतिपादन प्रारंभ होता है। वास्तव में युद्ध के रूपक को सामने रखकर गीता के उपदेश का मुख्य प्रयोजन जीवन की समस्याओं का समाधान करके न्यायोचित आचरण की प्रेरणा देना है। व्यापक दृष्टि से विचार करने पर कुरुक्षेत्र का मैदान जीवन-संग्राम एवं जीवन के अंतर्द्वंद्व को उपलक्षित करता है। यहां अर्जुन मानवमात्र का प्रतिनिधि है जो अपने जीवन संग्राम में किंकर्तव्यविमूढ़ है और कर्तव्य-अकर्तव्य का निर्णय नहीं कर पा रहा है। इस महत्वपूर्ण संवाद में गीता व्यक्तिगत और सामाजिक नैतिकता के आधारभूत सूत्रों तथा दार्शनिक मन्तव्यों की विवेचना करती है। श्री कृष्ण अर्जुन को निष्काम भाव से कर्म करने का उपदेश देते हैं। इस संवाद के माध्यम से गीता जीवन की विकट परिस्थितियों में हम क्या करें और क्या न करें, इसकी शिक्षा देती है। एफ. टी. ब्रुक्स गीता की सार्वभौमिकता से बहुत प्रभावित थे और उनकी मान्यता है कि इस प्राचीन ग्रंथ में ऐसे तत्व हैं जिनसे मानव-जाति के समुज्ज्वल भविष्य का निर्माण हो सकता है। इस संबंध में डॉ. राधाकृष्णन कहते हैं, "गीता के संदेश का क्षेत्र सार्वभौम है।यह प्रचलित हिंदू धर्म का दार्शनिक आधार है। इसका रचयिता गहरी संस्कृति वाला है, वह समालोचक न होकर सर्वग्राही है। वह किसी धार्मिक आंदोलन का नेता नहीं है, उसका उपदेश किसी संप्रदाय-विशेष के लिए नहीं है,उसने अपना कोई संप्रदाय स्थापित नहीं किया किंतु मनुष्य मात्र के लिए उनका निर्दिष्ट मार्ग खुला है"[1]

गीता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय निष्काम कर्मयोग है। आधुनिक युग में लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी और श्रीमती एनी बेसेंट आदि विचारकों ने कर्मयोग विशेषतः निष्काम कर्मयोग को ही गीता की मुख्य शिक्षा स्वीकार किया है। यह आत्मलाभ के साथ साथ लोकसंग्रह की भी सिद्धि का साधन है। यहां कर्म योग का अर्थ है 'निष्ठा पूर्वक अपने सामाजिक कर्तव्यों का पालन करना'।गीता का उपदेश केवल कर्म करने के लिए नहीं, बल्कि निष्काम भाव से कर्म करने के लिए है। निष्काम भाव का अर्थ है कर्मफल में आसक्ति न रखते हुए कर्म करना।

**निष्काम कर्मयोग**

गीता के अनुसार कर्म करना मनुष्य का सहज स्वभाव है। कोई भी मनुष्य क्षण भर के लिए भी कर्म का परित्याग नहीं कर सकता।[2] "कोई भी मनुष्य कर्मों को प्रारंभ न करने (अकर्मण्यता) मात्र से ही नैष्कर्म्य को नहीं प्राप्त होता और कर्मों का परित्याग करने मात्र से मोक्ष को भी नहीं प्राप्त करता"।[3] गीता की दृष्टि में यदि कोई व्यक्ति कर्मों का परित्याग करना भी चाहे तो उसके लिए ऐसा संभव नहीं है, क्योंकि उसकी शरीर और इंद्रियाँ सदैव किसी न किसी कर्म में लगी रहती हैं। यह संपूर्ण लोक कर्म से बंधा है[4] और प्रकृति के सत्व, रजस् एवं तमस गुण सब प्राणियों को विवश करके कर्म कराते हैं। गीता अकर्म की अपेक्षा कर्म को श्रेष्ठ मानती है, क्योंकि कर्म के अभाव में शरीर का निर्वाह असंभव है। यदि सभी लोग कर्म करना बंद कर दें तो सृष्टिचक्र रुक जाएगा। गीता के अनुसार यद्यपि संन्यास (कर्मत्याग) और कर्मयोग दोनों श्रेष्ठ हैं तथापि कर्मयोग कर्मसंन्यास से श्रेष्ठ है।[5] गीता पूर्णता की अवस्था में भी कर्मसम्पादन को आवश्यक मानती है।

निष्काम कर्मयोग का अर्थ है कि हम कर्म तो करें किंतु कर्मफल में आसक्ति न रखें।हम कर्म करने से बच तो नहीं सकते, लेकिन उसका रूपांतरण कर सकते हैं,उसे सकाम से निष्काम बना सकते हैं। श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "तुम्हारा कर्म करने मात्र में ही अधिकार है, उसके फल में कभी नहीं,अतः तुम कर्मों के फल की वासना वाला मत बनो तथा तुम्हारी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो"।[6] गीता की दृष्टि में कर्म दो प्रकार से किए जा सकते हैं पहला- सकाम भाव से अर्थात फलाकांक्षा के भाव से युक्त होकर कर्म करना और दूसरा- निष्काम भाव से अर्थात फलाकांक्षा के विचार का परित्याग करके कर्म करना। गीता के अनुसार सकाम कर्म बंधनकारी होते हैं और निष्काम कर्म बंधनकारी न होकर मोक्षप्रदायक होते हैं। गीता सकाम भाव से किए जाने वाले कर्मों के दुष्परिणामों को भी रेखांकित करती है। गीता के अनुसार, " सकाम होकर कर्म करने से कर्म में आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्ति से कामना(तृष्णा)जन्म लेती है। कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध और क्रोध से सम्मोह (मूढ़भाव) उत्पन्न होता है। सम्मोह से स्मृति नष्ट होती है। स्मृति नष्ट होने से बुद्धि( ज्ञानशक्ति) नष्ट हो जाती है और बुद्धि का नाश होने पर मनुष्य का पतन हो जाता है"।[7] गीता संन्यास और त्याग में भेद करती है।उसके अनुसार ऐसे सभी कर्मों का त्याग जो फलाकांक्षा से किए जाते हैं,संन्यास है तथा कर्मों के फलों में आसक्ति का त्याग 'त्याग' है।[8] अतः गीता की दृष्टि में कर्म फल में आसक्ति का परित्याग करके कर्म करने वाला ही सन्यासी एवं योगी है। गीता के अनुसार आसक्ति त्याग कर, सफलता- असफलता में समान भाव रखते हुए कर्म करना चाहिए। यह समत्वभाव ही योग है।[9] समत्वभाव से युक्त व्यक्ति ही फलाकांक्षा से रहित होकर कर्म करता है। ऐसा व्यक्ति लाभ–हानि, सुख-दुःख, जय- पराजय, शत्रु-मित्र और मान-अपमान में समान भाव रखते हुए कर्म करता है। इस प्रकार गीता समत्वभाव से निष्काम

होकर कर्म करने का उपदेश देती है। प्रो. एम. हिरियन्ना के अनुसार गीता कर्म में त्याग का उपदेश देती है, कर्म के त्याग का नहीं। गीता इसे कर्मों में कुशलता कहती है और यही योग है।[10] गीता की यह भी मान्यता है कि निष्काम भाव से कर्म करने वाला व्यक्ति परमात्मा को प्राप्त करता है।

निष्काम कर्मयोग के विषय में स्वामी रामसुखदास कहते हैं,

"कर्मयोग में कर्ता निष्काम होता है, कर्म नहीं; क्योंकि जड़ होने के कारण कर्म स्वयं निष्काम या सकाम नहीं हो सकते। कर्म कर्ता के अधीन होते हैं, इसलिये कर्मों की अभिव्यक्ति कर्ता से ही होती है। निष्काम कर्ता के द्वारा ही निष्काम-कर्म होते हैं, जिसे कर्मयोग कहते हैं। अतः चाहे 'कर्मयोग' कहें या 'निष्काम-कर्म'—दोनों का अर्थ एक ही होता है। सकाम कर्मयोग होता ही नहीं। निष्काम होने से कर्ता कर्मफल से असङ्ग रहता है; परन्तु जब कर्ता में सकाम भाव आ जाता है, तब वह कर्मफल से बँध जाता है। सकाम भाव तभी नष्ट होता है, जब कर्ता कोई भी कर्म अपने लिये नहीं करता, प्रत्युत सम्पूर्ण कर्म दूसरों के हित के लिये ही करता है"।[11]

**निष्काम कर्मयोग की व्यावहारिकता**

क्या व्यवहार में निष्काम भाव से कर्म करना संभव है? गीता इसका सकारात्मक उत्तर देती है। गीता के अनुसार आत्मलाभ (मोक्ष प्राप्ति) एवं लोकसंग्रह हेतु किए गए कर्म सकाम नहीं होते। इन दोनों लक्ष्यों की पूर्ति के लिए किया गया और ईश्वर को समर्पित कर्म वैसे ही बन्धनकारी नहीं होते, जैसे कीचड़ में उत्पन्न कमल कीचड़ से प्रभावित नहीं होता।[12] गीता का निष्काम कर्म सभी इच्छाओं की समाप्ति पर बल न देकर परम लक्ष्य में उनके विलयन पर जोर देता है। कर्म के निष्काम होने का या अर्थ यह नहीं है कि उसका कोई लक्ष्य नहीं है, हमारी आध्यात्मिक उन्नति का लक्ष्य ही उसे निष्काम बनाए रखता है।

कर्म के विषय में तीन दृष्टिकोण हो सकते हैं, पहला तमोगुणी का दृष्टिकोण... तमोगुणी कहता है कि फल मिलेगा तो कर्म करूंगा नहीं तो कर्म ही नहीं करूंगा, दूसरा रजोगुणी व्यक्ति कहता है कि कर्म तो अवश्य करूंगा पर फल पर अपना अधिकार जरूर रखूंगा और तीसरा दृष्टिकोण सत्वगुणी का है, जो कहता है कि कर्म करूंगा परंतु फल पर अपना अधिकार नहीं रखूंगा। सत्वगुणी व्यक्ति का दृष्टिकोण ही कर्मयोग का दृष्टिकोण है, जिसमें तमोगुणी की तरह कर्म छोड़ा भी नहीं जाता और रजोगुणी की तरह फल पर अधिकार रखा भी नहीं जाता। इस प्रकार गीता के निष्काम कर्मयोग में प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों मार्गों का समन्वय है। गीताकार कहते हैं कि यदि फल के प्रति आसक्ति छोड़ दी जाए तो मनुष्य को सुख- दुःख दोनों नहीं होंगे, वह समभाव में रह सकेगा। हमें दुःख तभी होता है जब हमें अपने कर्म का वांछित फल नहीं मिलता। यदि हम अपने जीवन का सूक्ष्मता से निरीक्षण करें तो हम देख सकते हैं कि कर्म करना हमारे हाथ में है,

लेकिन उस कर्म का फल हमारे हाथ में है ही नहीं , बल्कि यह अन्य कारकों से भी संचालित होता है। खेती करना हमारे हाथ में है, हम खेती करते भी हैं,किंतु क्या खेती का फल भी हमारे हाथ में है? कभी सूखा पड़ने से, कभी ओले पड़ने से और कभी बाढ़ से हमारी फसल नष्ट हो जाती है। कभी जानवर खेती को तबाह कर देते हैं। तो फल पूरी तरह हमारे हाथ में कहां है? जब फल हमारे हाथ में है ही नहीं तो हम फल के प्रति आसक्ति पर अपनी शक्ति का अपव्यय क्यों करें? गीता हमें यथार्थ स्थिति को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करती है। अतः बुद्धिमान व्यक्ति को फल के प्रति आसक्ति छोड़ कर ही कर्म करना चाहिए क्योंकि यह स्पष्ट है कि हम भले ही फल चाहते रहें, लेकिन उसपर हमारा अधिकार नहीं है। अतः कर्म करते हुए फल पर अधिकार न रखना ही जीवन के प्रति यथार्थ दृष्टि है। निष्काम कर्म का यह अर्थ नहीं है कि उसका फल ही नहीं होगा, उसका फल तो अवश्य होगा, लेकिन वह क्या होगा इस पर हमारा अधिकार नहीं है। जब मनुष्य कर्म फल पर अपना अधिकार समझने लगता है अर्थात मैंने कर्म किया और मुझे ऐसा फल मिलना ही चाहिए तभी सारी झंझट खड़ी होती है। जब मनुष्य कर्मफल पर अपना अधिकार न समझकर जो कुछ फल मिलता है उसे भगवान को अर्पण कर देता है, कर्मफल में अधिकार/आसक्ति/लगाव नहीं रखता, तब वह सुख-दुःख की चपेट से बाहर निकल जाता है।

सकाम व्यक्ति की दृष्टि सदैव फल पर होती है जबकि निष्काम व्यक्ति की दृष्टि सदैव कर्म पर होती है। असली वस्तु तो कर्म है। चूंकि सकाम व्यक्ति की दृष्टि सदैव फल पर रहती है अतः वह उतनी तन्मयता से कर्म नहीं कर पाता, जितनी तन्मयता से निष्काम व्यक्ति कर पाता है। निष्काम व्यक्ति पूरी तन्मयता से कर्म करता है और अपने कर्म से पूरी तरह संतुष्ट रहता है, वांछित फल प्राप्त होने पर वह आपे से बाहर नहीं होता और वांछित फल न प्राप्त होने पर वह दुःखी नहीं होता जबकि सकाम व्यक्ति इच्छा अनुसार फल नहीं मिलने पर दुःखी और निराश हो जाता है। निष्काम कर्मयोगी सिद्धि- असिद्धि में सम रहता है।

अब दूसरा प्रश्न यह है कि फल की आसक्ति को छोड़कर कर्म करना संभव भी है? हम जब भी कोई कर्म करते हैं तो फल पहले से ही मन में बैठा होता है। गीता के अनुसार फल की आसक्ति मन में जरूर बैठी होती है, लेकिन यथार्थ को स्वीकार करते हुए उसे मन में बैठे नहीं होना चाहिए क्योंकि फल हमारे हाथ में नहीं है। मन को ऐसी आनासक्ति की अवस्था में ले आना संभव है।जैसे.. डॉक्टर मरीज को ठीक करने के लिए दवा देता है, परंतु मरीज मर जाता है, मरीज के परिजन उसके लिए रोते हैं लेकिन डॉक्टर नहीं रोता। क्यों नहीं रोता? क्योंकि मरीज को ठीक करने के लिए दवा देने का कर्म तो उसने किया था, लेकिन फल में उसकी आसक्ति नहीं थी। यदि डॉक्टर का अपना लड़का मरीज होता और वह मर जाता तो डॉक्टर अपना सिर पीट लेता। क्यों? क्योंकि वह जब अपने लड़के को दवा देता है तो उसकी फल में आसक्ति होती है। इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि फल में आसक्ति के बिना भी कर्म करना संभव है।जो मनोवृति डॉक्टर अन्य मरीजों के साथ अपनाता है,वह अपने लड़के के साथ भी अपना सकता है।

इसी निस्संगता, निष्कामता को जीवन में स्थिर बना लेना निष्काम कर्मयोग है।अतः गीतोक्त ‘निष्काम कर्मयोग’ अव्यावहारिक नहीं है, बल्कि यह व्यावहारिक रूप से संभव है।

**निष्कर्ष**

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि गीता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय  निष्काम कर्मयोग है और निष्काम भाव से कर्म करने से ही कर्मों में कुशलता आ सकती है। गीता के अनुसार यांत्रिक अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से कर्म फल में आसक्ति का त्याग श्रेष्ठ है। ऐसे निष्काम कर्म से तत्काल ही परम शांति प्राप्त हो जाती है।[13] अतः जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निष्काम कर्म ही सबसे व्यावहारिक और सार्वभौमिक मार्ग है। यह सभी के लिए उपयोगी है, क्योंकि यह विश्व कर्म प्रधान है और यहां कर्म तो सभी को करना ही पड़ेगा। अतः व्यक्ति किसी भी धर्म का, किसी भी संप्रदाय का, किसी भी जाति का हो, निष्काम कर्म योग का सिद्धांत सभी के लिए समान रूप से उपयोगी है। जब आप परिणाम की चिंता छोड़कर केवल काम पर ध्यान केंद्रित करते हैं तो चिंता और तनाव समाप्त हो जाता है और मानसिक शांति प्राप्त होती है। आपकी पूरी ऊर्जा काम में लगती है, इससे कार्यकुशलता और उत्पादकता में वृद्धि होती है और काम की गुणवत्ता बेहतर होती है। यह सिद्धांत हमें व्यक्तिगत लाभ से ऊपर उठकर कार्य करने की प्रेरणा देता है, जिससे हम स्वार्थ,लोभ आदि मनोविकारों से मुक्त होते हैं। निष्काम कर्मयोग व्यक्ति को स्थितप्रज्ञ (स्थिर बुद्धि वाला) बनाता है जिससे वह सफलता- असफलता, लाभ-हानि में विचलित नहीं होता है और मानसिक रूप से संतुलित रहता है। यह कठिन समय में भी  व्यक्ति को निराशा से बचाकर कर्मशील बनाए रखता है। यह व्यक्ति में विषम परिस्थितियों से डटकर मुकाबला करने और उचित निर्णय लेने की क्षमता विकसित करता है। निष्काम कर्मयोगी अपने कर्तव्यों को ईश्वर की सेवा मानकर करते हैं, जिससे उनके कार्य न केवल उनके लिए बल्कि पूरे समाज के कल्याण का साधन बन जाते हैं। मूल रूप से गीता में मोक्ष, आत्मा की अमरता, पुनर्जन्म और ईश्वर की सत्ता की स्वीकृति है। लेकिन यदि कोई इनकी सत्ता नहीं मानता है अर्थात वह नास्तिक है तो उसके लिए भी निष्काम कर्मयोग(कर्तव्य के लिए कर्तव्य) उतना ही उपयोगी है क्योंकि उसको भी तो कर्म करना ही है,उसको भी तो कर्म में कुशलता और मानसिक शांति चाहिए ही। अतः गीता के निष्काम कर्मयोग का संदेश निर्विवाद रूप से सभी के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। निष्काम  कर्मयोग मनुष्य मात्र के लिए एक आदर्श जीवनशैली है जो उसे लोभ, अहंकार और द्वेष से मुक्त कर आत्म-संतोष की ओर ले जाती है।वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में, जहां मनुष्य अंदर ही अंदर असंतुष्ट और तनावग्रस्त है,पूरी एकाग्रता से अपना कार्य नहीं कर पा रहा है, चारों तरफ से अशांति, कलह और संघर्ष से घिरा हुआ है, सर्वत्र भ्रष्टाचार और अनाचार का बोलबाला है,यह संदेश और भी प्रासंगिक हो जाता है।

## संदर्भ


1. डॉ. राधाकृष्णन (2016), भारतीय दर्शन, भाग 1, दिल्ली, राजपाल एंड संस, पृष्ठ 560.
2. गीता 3.5,8.11.
3. गीता 3.4.
4. गीता 3.9.
5. गीता 5.2.
6. गीता 2.47.
7. गीता 2.62, 2.63.
8. गीता 18.2.
9. गीता 2.48.
10. गीता 2.50.
11. https://www.gitasupersite.iitk.ac.in/srimad?htrskd=1&hcrskd=1&choose=1&&language=dv&field_chapter_value=5&field_nsutra_value=3
12. गीता 5.10.
13. गीता 12.12.


## ग्रंथ-सूची


**1.** मिश्र, हृदयनारायण (2008), नीतिशास्त्र के प्रमुख सिद्धांत, इलाहाबाद, शेखर प्रकाशन, पृष्ठ 258-263.

**2.** पाठक, राममूर्ति (2009), भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा, इलाहाबाद, अभिमन्यु प्रकाशन, पृष्ठ 41-53.

**3.** Hiriyanna, M. (2005), Outlines of Indian Philosophy, Motilal Banarasidaas.

**4**. वर्मा, अशोक कुमार (2009), नीतिशास्त्र की रूपरेखा, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास.

**5.** रामसुखदास**,** स्वामी (2021), श्रीमद्भगवद्गीता साधक-संजीवनी हिन्दी टीका, गोरखपुर, गीताप्रेस.

**6**. https://www.igntu.ac.in/eContent/BSc-Yoga-4Sem-DrSandeep-Basis%20of%20Yoga%20Therapy.pdf pp.110-114.


Copyright © 2026 Author(s). Published by Siri Research Foundation. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution International License (CC BY 4.0).